ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 303-305

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

मानव अधिकार तथा भारतीय संविधान

राजेश कुमार यादव

असि0 प्रोफेसर– राजनीति विज्ञान, राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर (उ0प्र0), भारत

Received-16.03.2023, Revised-23.03.2023, Accepted-28.03.2023 E-mail: rajeshananya01@gmail.com"

सारांश: ***ब्रिटिश शासन के दौरान भारतीयों ने अनुभव किया कि मानवाधिकार मौलिक अधिकार ही नहीं है बल्कि उनके सभ्य जीवन का नेतृत्व करने वाले अहस्तांतरणीय अधिकार हैं। गांधीजी के जन आंदोलन से जानकारी मिलती है कि अधिकार संवैधानिक लोकतंत्र की बैसाखी माने जाते हैं और राष्ट्रीय आंदोलन का मुख्य उद्देश्य भारत में एक संवैधानिक राज्य की स्थापना करना था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1931 के लाहौर अधिवेशन में नागरिक अधिकारों का प्रस्ताव पारित किया और बाद में स्वतंत्र भारत में इन अधिकारों को मौलिक अधिकारों और नीति–निर्देशक सिद्धांतों के रूप में भारतीय संविधान में सम्मिलित किया गया। भारत में इन अधिकारों की महत्ता से पता चलता है कि पाश्चात्य संवैधानिक लोकतंत्र की स्थापना के राजनीतिक चिंतन का प्रभाव भारत में भी समान रूप से प्राचीन राजनीतिक सामंती परम्परा को राजनीतिक प्रक्रिया में जनसहभागिता पर आधारित तार्किक वैधता के साथ स्थानांतरित किया गया।***

कुंजीभूत शब्द– अनुभव, मानवाधिकार, मौलिक अधिकार, अहस्तांतरणीय अधिकार, जन आंदोलन, संवैधानिक लोकतंत्र।

भारतीय संविधान के संघटक तत्वों तथा मूल्यों, जैसे न्याय, समानता, धर्म निरपेक्षता और सांस्तिक बहुलवाद, का प्रतिबिंब हमें भारतीय संविधान में देखने को मिलता है। सुविधा की .ष्टि से सामाजिक क्रांति के लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में अधिकारों की उत्पत्ति तथा विकास को राज्य के नकारात्मक तथा सकारात्मक दायित्वों के रूप में दो कालों में विभाजित किया जा सकता है:

1. स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान का काल
2. संविधान सभा के निर्माण के दौरान का काल

भारत के लिए एक संविधान की परिकल्पना, प्रत्येक नागरिक को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रत्येक व्यक्ति के घर की अलंघनीयता, कानून के समक्ष समानता, सम्पत्ति का अधिकार तथा निःशुल्क शिक्षा जैसे सिद्धांतों को भारतीय संविधान के विचार के रूप में गारंटी दी जाने लगी थी। 1917 से 1919 के बीच कांग्रेस ने कई बार नागरिक अधिकारों तथा भारतीय और अंग्रेजों के बीच स्थिति की समानता की मांग को कई प्रस्तावों में दोहराया। प्रथम विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप 20वीं शताब्दी के मध्य तक भारतीयों की नागरिक अधिकारों की स्वीकृति संबंधी मांग के स्वरूप और स्वर में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। भारतीयों का लक्ष्य केवल भारतीयों को अंग्रेजों के समान अधिकारों की प्राप्ति ही नहीं था बल्कि भारतीयों की स्वतंत्रता के लक्ष्य को आश्वस्त करना भी था। मोंटेंग्यू चेम्सफोर्ड के सुधारों से एक निराशा का माहौल उत्पन्न हुआ था। इस दिशा में विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण चरण एनी बेसेंट द्वारा 1925 में राष्ट्रमण्डल के भारतीय विधेयक का निर्माण था, जिसमें कतिपय अधिकारों की सूची भी दी गई। 1928 में मोती लाल नेहरू की अध्यक्षता में गठित समिति के रिपोर्ट को 'नेहरु रिपोर्ट' के नाम से जाना जाता है, में मौलिक अधिकारों को भी शामिल किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1931 में कराची में आयोजित अपने सत्र में पहली बार मौलिक अधिकारों की एक व्यापक योजना बनाई, जिसमें कांग्रेस का यह राज मौलिक अधिकारों के विकास की प्रक्रिया में एक अन्य महत्वपूर्ण सीमा चिह्न था। इस प्रस्ताव में कहा गया कि राजनीतिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत भूख से पीड़ित लाखों लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता को भी शामिल किया जाना चाहिए जिससे कि शोषण का वास्तविक अन्त किया जा सके। 1935 के भारतीय शासन अधिनियम के निर्माण से पहले कई भारतीय नेताओं ने गोलमेज सम्मेलन में संवैधानिक दस्तावेज में मौलिक अधिकारों की घोषणा की मांग पर दुबारा बल दिया।

सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में 1944–45 में सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा एक समिति का गठन किया गया। इस समिति की रिपोर्ट 1945 में कहा गया कि संविधान से यह मांग और उम्मीद की जाती है कि संविधान में राजनीतिक और नागरिक अधिकारों के संबंध में समाज के प्रत्येक वर्ग को समानता, स्वतंत्रता तथा संरक्षण की समानता, प्रत्येक व्यक्ति को धर्म तथा पूजा की स्वतंत्रता सुनिश्चित की जाएगी।

मानवाधिकारों के प्रति संविधान सभा में वाद–विवाद– भारतीय संविधान में अधिकारों की लिखित गारंटी दी गई है। 1946 के कैबिनेट मिशन योजना में भारतीय संविधान निर्माण के लिए एक संविधान सभा के निर्माण का विचार व्यक्त किया गया था, जिसके कारण एक सलाहकारी समिति का निर्माण किया गया जो संविधान सभा को मौलिक अधिकारों के सुझावों की एक रिपोर्ट पेश करे। कैबिनेट मिशन के सुझाव के अनुसार 24 जनवरी 1947 को संविधान सभा ने सलाहकारी समिति की स्थापना को समर्थन दिया और सरदार पटेल इसके अध्यक्ष नियुक्त हुए। सलाहकारी समिति द्वारा मौलिक अधिकारों की एक उप समिति की नियुक्ति की गई जिसके अध्यक्ष आचार्य .पलानी को नियुक्त किया गया। इस समिति का पहला अधिवेशन 24 फरवरी 1947

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

को वी.एन. राव, के. टी. शाह, के.एम. मुंशी, डा.बी.आर. अम्बेडकर, हरनाम सिंह तथा कांग्रेस विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई सूची के मसौदे के साथ–साथ विविध टिप्पणियों और अधिकारों" के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा के लिए हुआ। यह सूची अत्यंत लंबी और विस्तृत थी क्योंकि इनमें भारत एवं अन्य स्रोतों से लिए गए सिद्धातों की व्याख्याएं तथा नकारात्मक एवम् सकारात्मक अधिकारों को भी समाविष्ट किया गया था। संविधान निर्माताओं के समक्ष व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवम् सामाजिक व्यवस्था के बीच संतुलन स्थापित करने की समस्या बड़ी जटिल थी। संविधान निर्माताओं के बीच हालांकि तकनीक को लेकर विवाद था परन्तु मौलिक सिद्धांतों के प्रति संभवतया एकमत था। यह निर्णय लिया गया कि मौलिक अधिकार वाद योग्य होने चाहिए।

नागरिक और राजनीतिक अधिकार– भारतीय संविधान में एक ओर जहां नागरिक और राजनीतिक अधिकार दिखाई देते हैं तो वहीं दूसरी ओर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों का प्रतिबिंब भी दिखाई देता है। हालांकि दोनों ही अधिकारों में विभिन्नता है परन्तु दोनों ही मानव अधिकारों के अभिन्न अंग है। नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को तत्कालीन पहुंच के रूप में स्वीकार किया गया था और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को आदर्श माना गया था और इन्हें प्राप्त करने के लिए राज्य को प्रयासरत रहना चाहिए।

इन दोनों के बीच कोई स्पष्ट अंतर नहीं है, इसलिए कोई भी व्यक्ति कुछ सामाजिक, आर्थिक और सांस्तिक अधिकार भारत के संविधान के भाग–3 द्वारा प्राप्त कर सकता है। इन दोनों प्रकार के अधिकारों के बीच अन्तर का आधार इनके तत्व और लागू करने के तरीके हैं। नागरिक और राजनीतिक को प्रायः नकारात्मक अधिकार के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है और इन्हें राज्य की शक्ति से स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। दूसरी ओर सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार सकारात्मक है और इन अधिकारों को प्रगतिशील अधिकार के रूप में जाना जाता है।

कुछ विद्वान सुविधा की दृष्टि से इन संवैधानिक अधिकारों को दो वर्गों में विभाजित करते हैं–प्रवर्तनीय अधिकार और अप्रवर्तनीय अधिकार। मौलिक अधिकार भारतीय संविधान के भाग–3 में तथा राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांत भाग–4 को अप्रवर्तनीय अधिकारों की श्रेणी में रखा जाता है। मौलिक अधिकार केवल भारतीय संविधान में ही समाविष्ट नहीं हैं बल्कि न्यायिक सक्रियता के चलते न्यायालय से भी प्राप्त किए जा सकते हैं।

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार– संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्य अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा भी आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। इन अधिकारों की महत्ता, उपयोग और कार्यान्वयन संबंधी दृष्टिकोण के अनुसार, मूल्य के एक पदसोपान का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सिद्धांत के रूप में मानवाधिकारों को वर्गीकृत नहीं किया जा सकता जिससे कि मूल्यों के श्रेणीक्रम का प्रतिनिधित्व कर सके। आर्थिक, सामाजिक और सांस्तिक अधिकारों को नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के बिना लंबे समय तक सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। दूसरा विचार सामाजिक, सांस्तिक और आर्थिक अधिकार के विचार का विरोध करता है।

इस विचार के अनुसार, नागरिक और राजनीतिक अधिकार बाध्य किए जा सकने वाले या न्यायिक अधिकार और तत्कालीन कार्यान्वित किए जा सकने वाले अधिकार हैं। हालांकि नीति–निर्देशक सिद्धातों का मौलिक अधिकारों के समान कार्यान्वयन के लिए न्यायालय द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता, परन्तु न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह मौलिक अधिकारों की व्याख्या इन नीति–निर्देशक सिद्धातों द्वारा स्थापित आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों के प्रकाश में करे। नीति–निर्देशक सिद्धातों को लागू करने के लिए संविधान के मौलिक ढांचे में परिवर्तन के बिना मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने की शक्ति न्यायपालिका को सौंपी गई है।

भारतीय संविधान के नीति–निर्देशक सिद्धातों के अंतर्गत अनुच्छेद 43 में, राज्य कर्मकारों को निर्वाह मजदूरी, काम की मानवोचित दशाएं, प्रसूति, शिष्ट जीवन स्तर तथा अवकाश का पूर्ण उपभोग और सामाजिक तथा सांस्तिक अवसर सुनिश्चित करने का प्रयास करेगा। किसी व्यक्ति का जीवन स्तर उसकी सामाजिक स्थिति, सामाजिक परिवेश जिसमें वह रहता है और उस स्थान की जलवायु संबंधी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति का जीवन स्तर, सुविधाएं और आवश्यकताएं, व्यक्ति, समय और स्थान के साथ–साथ भिन्न होती हैं।

मानवाधिकार और भारत की न्यायपालिका– मानवाधिकारों का संरक्षण कभी भी स्थिर कानूनों द्वारा सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। एक न्यायपूर्ण समाज के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कानून सदैव निरंतर और गतिशील होने चाहिए। इस दिशा में भारत के संवैधानिक कानून अपवाद नहीं हैं। कानून की व्याख्या करते समय न्यायिक व्यवहार समय के साथ–साथ परिवर्तित होता रहता है और यह परम्परागत कार्यविधि की बाधाओं से आगे जा चुका है। मानवाधिकारों के संबंध में न्यायपालिका की भूमिका बहुत ही प्रशंसनीय और उत्साहजनक रही है। न्यायपालिका ने मौलिक अधिकारों की व्याख्या करके समाज के कमजोर वर्गों जैसे – बच्चों, महिलाओं, वृद्धों तथा विकलांगो के अधिकारों का बचाव किया है। यदि आज नीति–निर्देशक सिद्धातों ने लगभग अधिकारों की सी स्थिति प्राप्त कर ली है तो इसका सारा श्रेय न्यायपालिका द्वारा संविधान की गतिशील पुर्नव्याख्या को ही जाता है जिसके कारण मौलिक अधिकारों और राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांत के बीच की दूरी तेजी से घट रही है।

भारत के अनुच्छेद 19 के अंतर्गत जीवन का अधिकार एक मौलिक अधिकार है परन्तु आजीविका को अनुच्छेद 39

ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-16, No.- I, Issues-27, YEAR- Jan.-March-2023

(ए) के अंतर्गत राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धातों में स्थान दिया गया है। यह अनुच्छेद राज्य को निर्देश देता है कि 'राज्य अपनी नीति का संचालन इस प्रकार करेगा कि सभी स्त्रियों तथा पुरूषों को जीवन के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार सुनिश्चित हो।' उच्चतम न्यायालय ने विचार व्यक्त किया कि अनुच्छेद 21 में 'जीवन' शब्द में आजीविका का अधिकार समाहित है। उसने कहा कि यदि आजीविका के अधिकार को संविधान में दिए गए जीवन के अधिकार का हिस्सा नहीं माना जाता तो यह किसी व्यक्ति को उसके जीवन के अधिकार से वंचित कर दिये जाने के बराबर होगा।

पर्यावरण के संरक्षण के संबंध में न्यायपालिका की भूमिका बहुत ही सराहनीय है। न्यायपालिका ने लोगों को एक प्रदूषण रहित जीवन प्रदान किया है। न्यायिक सक्रियता की प्रवृत्ति एक बहुत ही स्वस्थ प्रवृत्ति है। संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्रदूषण रहित वायु और जल उपभोग करने का अधिकार एक मौलिक अधिकार बन चुका है।

मानव अधिकार : चुनौतियां और संभावनाएं– लोकतंत्र में प्रेस महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और भारतीय संविधान के अनुच्छेद 19 के अन्तर्गत विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान की गई है। मानवाधिकारों की रक्षा करने में भारत की स्वतंत्र न्यायपालिका और स्वतंत्र तथा निष्पक्ष प्रेस महत्वपूर्ण, भूमिका अदा करते हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस दिशा में कार्यक्षेत्र में यौन उत्पीड़न के विरूद्ध संरक्षण के लिए स्पष्ट दिशा निर्देश दिये हैं और अब अधीनस्थ न्यायालय लिंग संबंधी भेदभाव को मानव अधिकारों के हनन के रूप में स्वीकार करते हैं।

मानव अधिकारों के सकारात्मक पहलू के साथ ही मानवाधिकारों का एक नकारात्मक पहलू भी है और हम इसकी अवहेलना नहीं कर सकते। आज सरकारों की यह प्रवृत्ति बन गई है कि वह प्रायः मुकदमों या याचिकाओं की आड़ में मानवाधिकारों की अवहेलना करती है और हाल के वर्षों में बढ़ते हुए आतंकवाद का लाभ उठा रही है। लोगों को मात्र संदेह के आधार पर हिरासत में लेना, उन पर दमन की कठोर थर्ड डिग्री का प्रयोग करना, झूठी मुठभेड़, कारावास में मृत्यु इत्यादि को लागू करवाने वाली संस्थाओं द्वारा मानव अधिकारों के हनन के गम्भीर उदाहरण हैं। कानून की सीमा के अन्तर्गत आतंकवादी गतिविधियों पर रोक लगाने तथा उनसे निपटने के लिए पुलिस को आवश्यक शक्तियां प्रदान की गई है, परन्तु ज।व। और च्व्ज। जैसे विध्वंसक कानूनों की आड़ में मानवाधिकारों का हनन किया जाता है जो एक अपूरणीय क्षति है।

उपसंहार– मानव अधिकारों के बिना लोकतंत्र संभव नहीं है। इस बात को ध्यान में रखना जरूरी है कि लोकतंत्र का अर्थ केवल बहुमत का शासन नहीं है। यह मानवाधिकारों के साथ बहुमत का शासन है। लोकतंत्र को बनाए रखने के लिए, धार्मिक स्वतंत्रता, समानता और कानून का शासन, इत्यादि सिद्धातों का होना आवश्यक है जिनसे मानव अधिकारों का निर्माण होता है परन्तु मानव अधिकारों का विचार एक स्थिर विचार नहीं है, यह लगातार परिवर्तनशील है। आज के विचार पहले के विचारों से भिन्न हैं। मानवाधिकारों के कार्यकर्ता वी.एन.तारकुण्डे के अनुसार, मानव अधिकार राजनीतिक शक्ति की प्रतिलिपि है और यह राज्य को शासित करने वालों में निहित है। राज्य शक्ति तथा जनशक्ति दोनों का जन्म मानवाधिकारों से होता है। जनशक्ति में वृद्धि के लिए राज्यशक्ति के स्थान पर अधिक शक्तिशाली लोकशक्ति की आवश्यकता है और यह केवल तभी संभव है जब लोगों में मानवाधिकारों का प्रचार किया जाए और उनके कार्यान्वयन के लिए बाध्य किया जाए। वास्तविक लोकतंत्र तब संभव होता है जब राज्यशक्ति पर लोकशक्ति का नियंत्रण होता है। इसलिए मानवाधिकारों का समस्त आन्दोलन जनआन्दोलन है–लोगों द्वारा एक गैर सरकारी आन्दोलन प्रारंभ करना चाहिए और उसके विकास में जनसंगठनों को भूमिका निभानी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Baxi Upendra (ed.), The right to be Human, India International Centre, New Delhi, 1987.
2. Desai A.R. (ed.), Violations of Demo cratic Rights in India, Popular Prakashan, Bombay, 1986.
3. Kothari Rajni and Harsh sethi (ed.), Special Issue on the politics of Hu man Rights. Lokayan Bulletin 5/4/05.
4. Lutz Plannum, and Burke (ed.), New Directions in Human Rights. University of Pennsylavania Press, Philadelphia, 1989.
5. E. Welch, Jr. and V.a. Leary (ed.), Asian perspective on Human Rights, Western Press, Oxford, 1990.
6. Nandita Haskar, Women and Justice for All in Women's Liberation and Politics of Religious perosnal laws in India, (ed.) Desai, A.R., Mumbai, 1991.
7. Bina Agrawal, A field of One, Own. Gender and Land Rights in South Asia, Oxford University Press, 1994. Flavia Agnes, (ed.)
8. Family Courts : From the Frying Pan into the Fire? In Justice for Women, Indira Jai Singh, Goa, 1996.

*****